दवाइयों के विज्ञापन का सवाल

अधिकांश देशों में दवाइयों के विज्ञापन पर प्रतिबंध है। मतलब कोई कंपनी सीधे आम लोगों को रिझाने के लिए अपनी दवाइयों का विज्ञापन अखबारों, रेडियो या टीवी पर नहीं कर सकती। अलबत्ता, यू.एस. और न्यूज़ीलैण्ड ही दो ऐसे देश हैं जहां सीधे उपभोक्ता के लिए दवा के विज्ञापन किए जा सकते हैं। एक ताज़ा अध्ययन का निष्कर्ष है कि ऐसे विज्ञापनों पर प्रतिबंध का कोई फायदा नहीं है।

आमतौर पर सीधे उपभोक्ताओं के लिए दवाइयों के विज्ञापन का मसला विवादास्पद रहा है। इसके पक्ष और विपक्ष में सशक्त दलीलें हैं। जैसे ऐसे विज्ञापनों के हिमायती कहते हैं कि इससे समाज को बहुत फायदा होता है क्योंकि इस तरह से आम लोगों में बीमारियों व उनके उपचार की जागरूकता बढ़ती है। दूसरी ओर, इसके विरोध में तर्क यह है कि ऐसे विज्ञापनों से अनावश्यक दवाइयों की मांग बढ़ती है क्योंकि मरीज़ डॉक्टर पर दबाव बनाते हैं।

मगर इस बारे में कोई निष्कर्ष निकालना मुश्किल रहा है क्योंकि कंपनियां डॉक्टरों के लिए अलग से प्रचार अभियान चलाती हैं और इन दोनों का असर मिला-जुला होता है।

इस समस्या से निपटने के लिए हार्वर्ड मेडिकल स्कूल के माइकल लॉ ने एक तरीका निकाला। उनका कहना है कि ऐसे विज्ञापनों का असर देखना हो, तो कनाडा जाइए। कंपनियां वहां के डॉक्टरों पर तो प्रचार सामग्री की वैसी ही बौछार करती हैं जैसी अमरीका में। मगर कनाडा में टीवी पर दवाइयों के विज्ञापन नहीं आते। तो होता यह है कि कनाडा के फ्रेंच भाषी लोगों को तो प्रायः ये विज्ञापन देखने को नहीं मिलते (क्योंकि फ्रेंच भाषा के टीवी चैनल कनाडा के हैं और उन पर प्रतिबंध लागू है)। दूसरी ओर, कनाडा के अंग्रेज़ी भाषी लोग अमरीकी चैनल्स देखते हैं और उन पर बहुत से विज्ञापन दवाइयों के होते हैं। तो माइकल लॉ ने माना कि कनाडा के फ्रेंच भाषी लोगों का संपर्क दवाइयों के विज्ञापन से नहीं हुआ होगा।

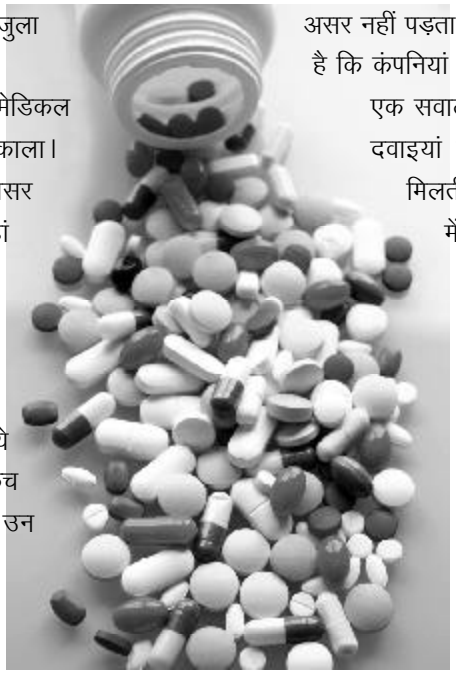

लॉ और उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन के लिए तीन दवाइयां चुनी जिनका अमरीकी टीवी पर खूब प्रचार किया जाता है। अब उन्होंने देखा कि डॉक्टरों द्वारा इन दवाइयों के लिखे जाने के संदर्भ में फ्रेंच भाषियों और अंग्रेज़ी भाषियों के बीच कोई अंतर है या नहीं। उन्होंने पाया कि तीन में से एक ही दवाई (ज़ेलनॉर्म) ऐसी थी जो अंग्रेज़ी भाषी मरीज़ों को ज़्यादा लिखी गई बजाय फ्रेंच भाषी मरीज़ों के। यह अंतर सिर्फ उस दौर में देखा गया जब इस दवा का प्रचार-प्रसार शुरू हुआ था। कुछ माह बाद यह अंतर भी खत्म हो गया। यानी सार्वजनिक प्रचार-प्रसार से दवाइयों की बिक्री पर कोई असर नहीं होता, ऐसा उक्त शोधकर्ताओं का निष्कर्ष है।

उनका कहना है कि टीवी पर दवाइयों के विज्ञापन पर जो हंगामा होता है वह बेकार है। मगर यदि बिक्री पर कोई असर नहीं पड़ता तो लाख टके का सवाल यह है कि कंपनियां ऐसा करती ही क्यों हैं?

एक सवाल यह भी है कि कई देशों में दवाइयां बगैर डॉक्टरी पर्ची के नहीं मिलतीं। मगर भारत जैसे कई देशों में तो कोई भी दवा सीधे जाकर दुकान से खरीदी जा सकती है। ऐसी परिस्थिति में टीवी वगैरह पर विज्ञापन का बहुत असर हो सकता है।

वैसे अधिकांश विशेषज्ञों को लगता है कि मात्र तीन दवाइयों के अध्ययन से कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है। ***(स्रोत फीचर्स)***